E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

कठोपनिषद् में विवेचित आत्मा का स्वरूप

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

आत्मस्वरूप का विवेचन करना ही सभी उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय है। कठोपनिषद् में नचिकेता ने तृतीय वर के रूप में 'मृत्यु' के पश्चात् आत्मा की सत्ता का समाधान परमतत्त्व को जानने वाले यमराज से जानने की इच्छा की। प्रारम्भ में यमराज द्वारा नचिकेता को अनेक प्रलोभन दिये गये किन्तु नचिकेता अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा और अन्त में उसकी निष्ठा एवं उत्कट जिज्ञासा देखकर यमराज ने उसे 'आत्मज्ञान' का उपदेश देना प्रारम्भ किया।

द्वितीय वल्ली में मृत्युदेव ने सांसारिक वस्तुओं में प्रवृत्ति निवृत्ति के आधार पर मनुष्यों का दो प्रकार से में विभाजन किया- (1) प्रेय मार्गी जो अविद्या के कारण स्त्री, पुरुष धन, वैभव और इहलोक को एषणाओं में रहते हैं। (2) श्रेय मार्गी-जो विद्या के कारण इन सांसारिक सुखों से विमुख हो आत्मतत्त्व के साक्षात्कार का उपाय खोजने में लीन हैं।

कहा गया है-

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।

श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।

अर्थात् श्रेय और प्रेय मनुष्य के पास आते हैं। बुद्धिमान् पुरुष उन दोनों को भलीभाँति समझकर अलग-अलग करता है। एवं वह प्रेय के समक्ष श्रेय को ही वरण करता है। किन्तु मूढ योग और क्षेम के कारण प्रेय को वरण करता है।

परिक्षाओं के बाद नचिकेता को श्रेय मार्ग का पथिक जानकर उससे यमराज आत्मा के स्वरूप का विधिवत् प्रतिपादन करते हैं।

आत्मतत्त्व के रहस्योद्घाटन से पूर्व यमराज बताते हैं कि नित्य आत्मतत्त्व अनित्य साधनों से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

आत्मा के रहस्य को स्पष्ट करते हुए यमराज कहते हैं कि नित्य चैतन्य स्वरूप अनन्त काल तक रहने वाला आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है। यह न किसी से और कहीं से उत्पन्न हुआ है। यह अजन्मा, नित्य, अविनशी तथा पुरातन है। शरीर नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता-

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चित्र बभूव कश्चित्।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

उत्त्पत्ति और नाश के निषेध से सभी छः भाव विकारों का निषेध समझ लेना चाहिए। अतः आत्मा किसी भी प्रकार से विकारी नहीं बनता, यह तात्पर्य है। उसके चैतन्य का कभी लोप नहीं होता क्योंकि वह चैतन्य स्वभाव है। अतः उसे मेधावी कहा जाता है। शाश्वत कहने का तात्पर्य है कि इसमें कभी किसी भी प्रकार की कमी नहीं आती। पुराण शब्द का प्रयोग सोद्देश्य है। इसका अर्थ है-पुरा अपि नव एव'।

यमराज आगे कहते हैं कि यदि मारने वाला आत्मा को मारने के लिए सोचता है, और मारा जाने वाला उसे मारा हुआ समझता है, तो वे दोनों ही उसे नहीं जानते। वस्तुतः न यह मारता है और न मारा जाता है-

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।

उभौ तौ न विजानीतौ नायं हन्ति न हन्यते।।

कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर मात्र को ही आत्मा मानने वाला शरीर को मारने पर अपने को मारने वाला समझता है और शरीर के मार खाने पर अपने को मार खाने वाला समझता है। परन्तु, जो शरीर में रहने वाला निर्विकार आत्मतत्त्व को समझ गया है, वह तो शरीर के मारने पर या मार खाने पर भी वैसा ही निर्विकार बना रहता है एवं कभी भी यह नहीं समझता कि मैंने मारा या मार खाई। जो ऐसा मानते हैं, वे वस्तुतः आत्मा को जानते ही नहीं। आत्मा सर्वथा विकारों से रहित है एवं आकाश की तरह निरवयव सर्वव्यापक है।

प्राणी की हृदय गुफा में रहने वाली आत्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा महान् से महान् है। आत्मा की इस महिमा को कामना रहित निष्काम पुरुष (साधक) इन्द्रियों की सहायता से देखता है और शोक रहित हो जाता है-

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।

कहने का तात्पर्य है कि आत्मदर्शन हमेशा ही प्राणी को अपनी हृदय गुफा में ही होता है। ब्रह्मा से लेकर घास के तिनके पर्यन्त सभी प्राणियों के हृदय में ही आत्मा स्थित है। इससे जो आत्मा का दर्शन अपने से बाहर करने का प्रयत्न करता है, उसको आत्मदर्शन कभी नहीं हो सकता।

यह आत्मा स्थित हुआ भी दूर तक जाता है, शयन करता हुआ भी सर्वत्र पहुँचता है। हर्ष से युक्त भी और रहित भी-

आसीनो दूरं व्रजति शयानो यातो सर्वतः।

शरीर रहित नश्वर शरीरों में अवस्थित अचल, महान् तथा सर्वव्यापी रूप में उस आत्मा को जानकर धीर व्यक्ति शोक नहीं करता है-

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।

महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।।

यह आत्मा न तो प्रवचन से, न मेधा या धारणा शक्ति से और न बहुत श्रवण से ही प्राप्त करने योग्य है। जिस साधक को यह आत्मा वरण कर लेता है, उसी के द्वारा वह प्राप्त करने के योग्य है। उसी साधक के प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को प्रकट कर देता है-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।

जो पाप-कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं, जो समाहित नहीं है, और जिसका चित्त शान्त नहीं है, वह आत्मा को केवल शुष्क ज्ञान से प्राप्त नहीं कर सकता है-

नाविरतो दुश्चरितात् नाशान्तो नासमाहितः।

नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैमाप्नुयात्।।